Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 9, June-2019, ISSN 2230-7540

भारत विभाजनः हिंसा, प्रतिनिधित्व और अनिवार्यता

Surender Singh*

Research Scholar, History

सारांश - भारत विभाजन अंग्रेजों की उस नीति का परिणाम है जो फूट डालो और राज करो के नाम से प्रचलित थी। प्रथम स्वाधीनता संग्राम में हिंदू मुस्लिम एकता अंग्रेजी हुकूमत के लिए एक चुनौती बन गई थी। जिससे उन्होंने महसूस किया कि अगर हमें भारत पर राज करना है तो हमें विभाजन रूपी बीज बोना पड़ेगा। आज उसी विभाजन का परिणाम भारतीय सभ्यता संस्कृति के लिए एक चुनौती बन चुका है।

----------X----------

भूमिका

भारत विभाजन का उत्तरदायित्व कांग्रेसी नेताओं पर डालते हुए श्री प्रकाश ने लिखा था- "कांग्रेस के नेता एक बार शासन का अवसर प्राप्त करके उसे छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे और वे उसकी कुछ भी कीमत देने को तैयार थे। मेरा विचार है कि अधिकार के मोह और देश की दुर्व्यवस्था के भय ने हमारे नेताओं के मन में ऐसा प्रभाव उत्पन्न किया कि उन्होंने विभाजन स्वीकार कर लिया।" भारत के अंतिम अंग्रेज गवर्नर जनरल लॉर्ड माउंटबेटन ने भारत विभाजन का संपूर्ण उत्तरदायित्व मुस्लिम लीग के नेता श्री जिन्ना पर डालते हुए 21 अक्तूबर 1975 को बी.बी.सी को एक भेंटवार्ता में कहा- "जिस समय भारत को आजादी मिली उस समय मैंने पूरी कोशिश की थी कि इसे विभाजित होने से बचाया जाए। लेकिन सिर्फ एक आदमी ने सब कोशिशों पर पानी फेर दिया और वह आदमी था, मोहम्मद अली जिन्ना।" महात्मा गांधी अक्सर कहा करते थे कि भारत विभाजन उनकी लाश पर होगा। इसके उत्तर में मोहम्मद अली जिन्ना कहा करते थे कि भारत का विभाजन नहीं हुआ तो वे भारत को तहस-नहस कर देंगे। इसके बाद जब भारत विभाजन पर कांग्रेस ने अपनी सहमति दी तो महात्मा गांधी ने अपने को उस सहमति से असंबंधित बतलाया। उनकी असहमति के बावजूद भारत का विभाजन हुआ। अंग्रेजों ने भारत में विभाजन करो और शासन करो' की नीति को अपनाया। 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम में हिंदू और मुसलमानों ने जो मिलकर संघर्ष किया था, वह हिंदू-मुस्लिम एकता उनके लिए चुनौती थी। प्रारम्भ में अंग्रेजों ने मुसलमानों के विरुद्ध हिंदुओं को उभारा। हिंदू तेजी से उभरे और बहुसंख्यक होने के कारण हिंदुओं की ओर से खतरे का अहसास और भी अधिक होने लगा। इससे अंग्रेजो को लगा कि हिंदुओं को दबाया जाए और मुसलमानों को उभार कर अपनी ओर मिलाया जाये। इसके लिए मुसलमानों का विश्वासपात्र बनना तथा उनको अपना विश्वासपात्र बनाना आवश्यक था। इस उद्देश्य को सफल बनाने का अंग्रेज अधिकारी मि. बेक ने उस समय के मुस्लिम नेता और विख्यात शिक्षा शास्त्री सर सैयद अहमद खां पर अपना जादू चलाया और अपनी कूट बुद्धि से उन्हें और उनके साथियों को अपनी ओर मिला लिया। इसीलिए जो सर सैयद अहमद खां हिंदू और मुसलमानों को एक दुल्हन की दो सुंदर आंखों से उपमा दिया करते थे और हिंदुस्तान के निवासी के रूप में अपने को 'हिंदू' कहने में फक्र महसूस करते थे, उन्हीं ने मुसलमानों को राष्ट्रीय विचारधारा की ओर बढ़ने से रोका। एक संघ बनाया "उत्तरी भारत का आग्ल मुस्लिम सुरक्षा संघ", जिसका उद्देश्य मुसलमानों में अंग्रेजी सरकार के प्रति राजभक्ति के भाव फैलाना था। मुस्लिम लीग प्रारंभ से ही किस प्रकार अंग्रेज परस्त रही इसका एक उदाहरण नबाब बकारूल मुल्क के उस भाषण से मिल सकता है, जो उन्होंने लीग की स्थापना के लगभग तीन माह बाद, अलीगढ़ कॉलेज में छात्रों की एक सभा में दिया था। उसमें उन्होंने कहा था- "तुम को ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा करनी है और उसके लिए शत्रु से लोहा लेना पड़ेगा। अगर तुम यह समझ लो और इसको पूरा करो तो तुम्हारा नाम, ब्रिटिश इतिहास में सुनहरे अक्षरों में लिखा जायेगा। आने वाली पीढ़ियां तुम्हारा नाम इज्जत के साथ याद करेंगी और तुम्हारा एहसान मानेंगी।" मुस्लिम लीग के निर्माण के बाद, भारत-विभाजन के लिए निर्माण कार्य प्रारंभ हो गया। 1909 के एक्ट में मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्र की व्यवस्था की गयी। मुस्लिम लीग ने इसके लिए अंग्रेजी सरकार का आभार

www.ignited.in

व्यक्त किया। इसके बाद इंग्लैंड के द्वारा टर्की के विरुद्ध नीति अपनाये जाने के कारण 1912 से मुस्लिम लीग में हमें अंग्रेजों के विरुद्ध कुछ विचार देखने को मिले। लीग कांग्रेस के निकट आने लगी, जिसका परिणाम हुआ 1916 का लखनऊ समझौता, जो मुस्लिम लीग और कांग्रेस के बीच संपन्न हुआ। इस समझौते से यद्यपि कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच के मतभेद कुछ समय के लिए कम हुए मगर इसमें भी भारत-विभाजन के कार्य को आगे ही बढ़ाया। कारण यह था कि इस समझौते में मुसलमानों के लिए एक-तिहाई स्थान सुरक्षित रखने की बात स्वीकार की गयी। यह संख्या देश में मुसलमानों की कुल जनसंख्या के औसत से कहीं अधिक थी। इससे भी बढ़कर बात यह हुई कि इस पर अपनी सहमति देकर कांग्रेस ने सांप्रदायिक आधार पर पृथक निर्वाचन क्षेत्र के अंग्रेजी निर्णय को पुष्ट कर दिया, जिसका दूरगामी प्रभाव पड़ना निश्चित था। तुष्टीकरण की इस नीति से पृथकता की भावना उभरी। 1920 में महात्मा गांधी ने जो असहयोग आंदोलन प्रारंभ किया, उसके पीछे भी एक मुख्य भावना, राष्ट्रीय आंदोलन में अंग्रेजों के विरुद्ध मुसलमानों को आकर्षित करने की थी। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद इंग्लैंड तथा अन्य मित्र देश, टर्की के साम्राज्य को उससे छीन-कर आपस में बांटने में लगे थे। टर्की के खलीफा (बादशाह) को उस समय विश्व के सभी मुसलमान अपना धार्मिक नेता मानते थे। इससे भारत के मुसलमानों में भी अंग्रेजों के विरुद्ध भावनाएं उभर रही थी। उन्हीं भावनाओं का लाभ उठाने के लिए महात्मा गांधी ने अपने आंदोलन को खिलाफत आंदोलन का नाम दिया और मुसलमानों में उससे जो धार्मिक जोश उभरा, उसको उन्होंने सहज रूप में स्वीकार कर लिया। इस आंदोलन में मुस्लिम लीग तथा मुसलमानों की एक नयी संस्था 'जमैयत उल-उले-माए हिंद' ने भी भरपूर भाग लिया था, मगर आंदोलन का संचालन एक बड़ी सीमा तक उनका था। आंदोलन में मुसलमानों का सहयोग प्राप्त करने के लिए 'जमैयत उल उलमाए हिंद' ने एक फतवा (धार्मिक घोषणा) निकाला, जिस पर 425 मौलवियों के हस्ताक्षर थे और 470 मौलवियों ने इस पर बाद में अपनी स्वीकृति दी। कहा जाता है कि पाकिस्तान का विचार सर्वप्रथम सुप्रसिद्ध शायर मोहम्मद इकबाल के मस्तिष्क में पैदा हुआ। 1930 में मुस्लिम लीग का जो वार्षिक अधिवेशन हुआ, उसके वे अध्यक्ष थे। अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने पंजाब, सीमांत प्रदेश, सिंध और बलूचिस्तान को मिलाकर मुसलमानों के लिए एक पृथक राज्य की कल्पना की। अंग्रेजों के इशारे पर कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में अध्ययनरत एक छात्र रहमत अली ने 1932 में 'अब था कभी नहीं' (नाऊ और नेवर) शीर्षक से एक पर्चा प्रकाशित किया, जिसमें स्पष्ट शब्दों में मुसलमानों के लिए पृथक राज्य की मांग की गयी। रहमत अली ने ही पहली बार इसे पाकस्तान का नाम दिया जो बाद में पाकिस्तान कहा जाने लगा। इसमें जिन क्षेत्रों की मांग की गयी वे थे पंजाब, कश्मीर, सिंध और बलूचिस्तान। इसके बाद 1938 में सिंध प्रान्तीय मुस्लिम लीग ने तथा मार्च 1940 में राष्ट्रीय स्तर पर मुस्लिम लीग के वार्षिक अधिवेशन में मुसलमानों के लिए प्रथम राज्य का प्रस्ताव पारित किया गया। रहमत अली ने पूर्वोक्त पाकस्तान के अतिरिक्त, मुसलमानों के लिए बंग ए इस्लाम (बंगाल और आसाम) तथा उस्मानिस्तान (हैदराबाद दक्षिण) की भी मांग रखी। अलीगढ़ के प्रो. जफरूल हसन ने भारत को 6 भागों में बांटने की योजना प्रस्तुत की। 'पंजाबी' नाम के एक अन्य व्यक्ति की योजना भारत को 15 भागों में बांटने की थी।

मार्च 1942 में जब अंग्रेजी सरकार के द्वारा नियुक्त क्रिप्स मिशन भारत आया तो उसने परोक्ष रूप में पाकिस्तान को स्वीकार करते हुए अपने प्रतिवेदन में कहा कि भारतीय संविधान सभा के द्वारा बनाए गये संविधान को यदि देश का कोई भाग स्वीकार नहीं करेगा तो अंग्रेजी सरकार से अलग संविधान प्रदान कर देगी। इससे लीग को अत्यधिक प्रोत्साहन मिला। 1945 की बेवल योजना और शिमला सम्मेलन में भी अंग्रेजी सरकार ने मुस्लिम लीग को प्रोत्साहित किया। इस सब के फलस्वरुप अप्रैल 1946 में मुस्लिम लीग ने अपने वार्षिक अधिवेशन में पाकिस्तान के निर्माण के लिए प्रत्यक्ष कार्यवाही का प्रस्ताव पास कर दिया। सर फिरोज खां नून ने तो यहां तक कहा कि अगर पाकिस्तान नहीं बना तो 'हिंदू' मुसलमानों के उस तांडव नृत्य को देखेंगे जो चंगेज खां या हलाकू में भी नहीं किया होगा।'' कैबिनेट मिशन ने अपनी मई 1946 की रपट में अवश्य ही पाकिस्तान की मांग को अव्यवहारिक बतलाया, मगर उसने भी भारतीय संविधान सभा को जो तीन भागों में बांटने की योजना बनायी, वह भी परोक्ष रूप में पाकिस्तान की विचारधारा को ही स्वीकार करना था। फिर अंग्रेजी सरकार इस बात को बखूबी जानती थी कि भारत विभाजन की उनकी योजना का बिरवा अब इतना मजबूत वृक्ष बन गया है कि उनके कुछ कह देने मात्र से वह नष्ट नहीं हो सकता। यही हुआ भी। सितम्बर 1946 में जब अंग्रेजों ने भारतीयों की अन्तरिम सरकार का गठन किया तो उसमें कांग्रेस तो सम्मिलित हो गयी, मगर मुस्लिम लीग ने उसमें शामिल होने से मना कर दिया। बाद में अक्तूबर में लीग सरकार में शामिल हो गयी तो भी देश में निरंतर बढ़ रही हिंसक घटनाओं में कोई कमी नहीं आयी। इसके साथ ही लीग के असहयोगपूर्ण रवैये के कारण कांग्रेस मंत्रिमंडल के लिए भी सरकार चलाना कठिन हो गया। ऐसे वातावरण में ही लॉर्ड माउंटबेटन ने विभिन्न नेताओं से बातचीत की और निष्कर्ष के रूप में तीन जून 1947 को विभाजन के पक्ष में अपनी योजना प्रस्तुत कर दी, जिसे न केवल मुस्लिम लीग ने ही

अपितु कांग्रेस ने भी स्वीकार कर लिया। विभाजन को टालने के लिए महात्मा गांधी का प्रस्ताव था कि प्रधानमंत्री का पद श्री जिन्ना को दे दिया जाय। मगर ऐसा कब तक चल सकता था ? अव्वल तो बहुमत प्राप्त राजनीतिक दल, कांग्रेस इसको स्वीकार करती ही कैसे ? (उसने स्वीकार किया भी नहीं) यदि किसी तरह यह प्रस्ताव स्वीकार कर भी लिया जाता तो भी श्री जिन्ना को शासन चलाने के लिए कांग्रेस के सहयोग की आवश्यकता होती। फिर विचारधाराओं में जहां आकाश पाताल का अंतर हो, वहां यह सहयोग कब तक और कैसे संभव हो पाता? यह भी कहा जाता है कि श्री जिया के फेफड़ों को क्षय रोग ने बिल्कुल नष्ट कर दिया था और वे अधिक से अधिक दो वर्ष जिंदा रह सकते थे। तब तक के लिए उन्हें प्रधानमंत्री बनाकर विभाजन को टाला जा सकता था। मगर इस संदर्भ में भी पहली बात तो यही है कि उनके इस रोग की जानकारी उनके निजी चिकित्सक के अतिरिक्त किसी को नहीं थी। दूसरी बात यह है कि अंग्रेजों ने देश में जो घृणा और वैभनस्य का वातावरण बनाया था, उसने केवल एक नहीं अनेक जिन्नाओं को उत्पन्न किया था। यह भी कहा जाता है गुलामी के अंतिम दिनों में, स्वतंत्रता के लिए हमारी ललक बहुत अधिक बढ़ गयी थी। अंतरिम सरकार में शामिल हुए नेताओं में सत्ता मोह भी अत्यधिक बढ़ गया था। इसलिए वे किसी भी कीमत पर शीघ्र स्वतंत्रता चाहते थे। इसीलिए उन्होंने भारत विभाजन की योजना को तत्काल स्वीकार कर लिया। इस आरोप में आंशिक सत्य हो सकता है। उन दिनों चूंकी पाकिस्तान की मांग काफी अधिक जोर पकड़ चुकी थी और देश में बढ़ते हुए हिंसक वातावरण के कारण कांग्रेसी नेता किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति में थे, इसलिए अंग्रेजी सरकार ने उस समय को पाकिस्तान निर्माण के माध्यम से अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए सर्वाधिक उपयुक्त समझा। उन्होंने स्पष्ट घोषणा कर दी कि वे जून 1948 तक (बाद में इसे घटाकर अगस्त 1947 कर दिया) भारत छोड़ देंगे और उस समय तक यदि देश के प्रमुख दल आपस में मिलकर देश की राजनीतिक समस्या का कोई सर्वसम्मत समाधान नहीं ढूंढ सके तो अंग्रेजी सरकार को यह सोचना पड़ेगा कि वह देश की संप्रभुता को, किसी केंद्रीय सत्ता को सौंपे या प्रान्तों और रियासतों में उसे विभाजित कर दें। इस घोषणा का सीधा सा अर्थ यह था कि यदि भारत विभाजन की योजना को तत्काल स्वीकार नहीं किया जाता तो देश को केवल दो नहीं शायद अनेक टुकड़ों में विभाजित होना पड़ता। अंग्रेजी सरकार ने भारत को स्वतंत्रता देने के काफी समय उपरांत लगभग तीन हजार से अधिक गुप्त दस्तावेजों को प्रकाशित किया, जिनके अध्ययन से यह भी पता चलता है कि अंग्रेजी सरकार की योजना के अनुसार यदि कांग्रेस भारत विभाजन स्वीकार नहीं करती तो समस्त ब्रिटिश सेना और अधिकारी, हिंदू बहुल क्षेत्रों को आकस्मिक रुप में छोड़कर, पाकिस्तान के लिए निर्धारित मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में जाकर उन्हें पाकिस्तान के रूप में घोषित कर देते और उनकी रक्षा के लिए जुट जाते। इसका सीधा सादा अर्थ होता बड़े पैमाने पर गृहयुद्ध। इन परिस्थितियों में हमारे लिए विभाजन को स्वीकार करने के अतिरिक्त और कोई चारा ही नहीं था। विभाजन की योजना को जब कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया तो उसके बाद भी अंग्रेज अधिकारी अपने पाकिस्तान प्रेम को प्रकट करते रहे। इनमें अन्य साधारण अधिकारियों के अतिरिक्त स्वयं वाइसराय लार्ड माउंटबेटन भी थे। लार्ड माउंटबेटन 23 जून 1947 को कश्मीर गये और वहां के महाराजा पर इस बात के लिए दबाव डाला कि वे पाकिस्तान के साथ मिलें, भारत के साथ नहीं। इस कथन के पक्ष में दो प्रमाण है। प्रथम कश्मीर के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री मेहरचंद महाजन ने अपने संस्मरण में लिखा कि "महाराजा से बातचीत के बाद में इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि माउंटबेटन की राय में कश्मीर नरेश के लिए पाकिस्तान के साथ मिलने के सिवा और कोई विकल्प नहीं रह गया था।" इसी प्रकार बम्बई के एक अंग्रेज व्यापारी रसेल ने कश्मीर में इंग्लैंड के तत्कालीन प्रतिनिधि श्री बिलफ्रेड वेब से बातचीत की जिसका विवरण देते हुए श्री रसेल ने लिखा- "श्री वेब ने बतलाया कि वाइसराय का श्रीनगर आगमन उद्देश्यपूर्ण था। उन्होंने महाराज को साफ-साफ बतला दिया था कि महाराज के स्वयं के हित के लिए एवं कश्मीर की भलाई के लिए यह आवश्यक है कि वह समय नष्ट न करके तत्काल पाकिस्तान में विलय कर लें।

संदर्भ सूची

स्वाधीनता दिवस विशेषांक, दैनिक ट्रिब्यून 15 अगस्त 1982

दैनिक भास्कर 14 सितंबर 2010

दैनिक ट्रिब्यून 26 जनवरी 1999

भारत विभाजनः सरदार पटेल

विवेकानंद साहित्यः नवम खंड

पाकिस्तान या भारत का विभाजनः डॉ. अंबेडकर

Corresponding Author

Surender Singh*

Research Scholar, History